बूढ़ी काकी

सामग्री

बूढ़ी काकी
राजा हरदौल

बूढ़ी काकी

बुढ़ापा बहुधा बचपन का पुनरागमन हुआ करता है। बूढ़ी काकी में जिह्वा-स्वाद के सिवा और कोई चेष्टा शेष न थी और न अपने कष्टों की और आकर्षित करने का, रोने के अतिरिक्त कोई दूसरा सहारा ही । समस्त इन्द्रियाँ, नेत्र, हाथ और पैर जवाब दे चुके थे । पृथ्वी पर पड़ी रहतीं और घरवाले कोई बात उनकी इच्छा के प्रतिकूल करते, भोजन का समय टल जाता या उसका परिमाण पूर्ण न होता अथवा बाजार से कोई वस्तु आती और उन्हें न मिलती, तो वे रोने लगती थीं । उनका रोना-सिसकना साधारणा रोना न था, वे गला फाड़-फाड़कर रोती थीं ।

उनके पतिदेव को स्वर्ग सिधारे कालान्तर हो चुका था । बेटे तरुण हो-होकर चल बसे थे । अब एक भतीजे के सिवा और कोई न था । उसी भतीजे के नाम उन्होंने अपनी सारी सम्पत्ति लिख दी थी । भतीजे ने सम्पत्ति लिखते समय तो खूब लम्बे-चौड़े वादे किये, परन्तु वे सब वादे केवल कुलीडिपो के दलालों के दिखाये हुए सब्ज़बाग थे । यद्यपि उस सम्पत्ति की वार्षिक आय डेढ़-दो सौ रुपये से कम न थी, तथापि बूढ़ी काकी को पेट-भर भोजन भी कठिनाई से मिलता था । इसमें उनके भतीजे पण्डित बुद्धिराम का.अपराध था अथवा उनकी अर्द्धांगिनी श्रीमती रूपा का, इसका निर्णय करना सहज नहीं। बुद्धिराभ स्वभाव के सज्जन थे, किन्तु उसी समय तक, जब तक कि उनके कोष पर कोई आँच न आये। रूपा स्वभाव से तीव्र थी सही, पर ईश्वर से डरती थी। अतएव बूढ़ी काकी को उसकी तीव्रता उतनी न खलती थो, जितनी बुद्धिराम की भलमनसाहत ।

बुद्धिराम को कभी-कभी अपने अत्याचार का खेद होता था । विचारते कि इसी सम्पत्ति के कारण मैं इस समय भलामानुष बना बैठा हूँ। यदि मौखिक आश्वासन और सूखी सहानुभूति से स्थिति में सुधार हो सकता तो उन्हें कदाचित् कोई आपत्ति न होती, परन्तु विशेष व्यय का भय उनकी सचेष्टा को दबाये रखला था। यहाँ तक कि यदि द्वार पर कोई भला आदमी बैठा होता और बूढ़ी काकी उस समय अपना राग अलापने लगतीं तो वह आग हो जाते और घर में आकर उन्हें जोर से डाँटते । लड़कों को बुड्ढों से स्वाभाविक विद्वेष होता ही है और फिर जब माता- पिता का यह रंग देखते तो बूढ़ी काकी को और सताया करते । कोई चुटकी काटकर भागता, कोई उन पर पानी की कुल्ली कर देता । काकी चीख मारकर रोतीं, परन्तु यह बात प्रसिद्ध थी कि वह केवल खाने के लिए रोती हैं, अतएव उनके सन्ताप और आर्त्तनाद पर कोई ध्यान नहीं देता था। हाँ, काफी क्रोधातुर होकर बच्चों को गालियाँ देने लगतीं, तो रूपा घटनास्थल पर आ पहुँचती । इस भय से काकी अपनी जिह्वा-कृपाण का कदाचित् ही प्रयोग करती थीं, यद्यपि उपद्रव शान्ति का यह उपाय रोने से कहीं अधिक उपयुक्त था।

सम्पूर्ण परिवार में यदि काकी से किसी का अनुराग था, तो वह बुद्धिराम की छोटी लड़की लाड़ली थी। लाड़ली अपने दोनों भाइयों के भय से अपने हिस्से की मिठाई-चबेना बूढ़ी काकी के पास बैठकर खाया करती थी। यही उसका रक्षागार था, और यद्यपि काकी की शरण उनकी लोलुपता के कारण बहुत महंगी पड़ती थी, तथापि भाइयों के अन्याय से कहीं सुलभ थी। इसी स्वार्थानुकूलता ने उन दोनों में सहानुभूति का आरोपण कर दिया था।

2

रात का समय था। बुद्धिराम के द्वार पर शहनाई बज रही थी और गाँव के बच्चों का झुण्ड विस्मयपूर्ण नेत्रों से गाने का रसास्वादन कर रहा था। चारपाइयों पर मेहमान विश्राम करते हुए नाइयों से मुक्कियाँ लगवा रहे थे। समीप ही खड़ा हुआ भाट बिरदावली सुना रहा था और कुछ भावज्ञ मेहमानों की 'वाह-वाह' पर ऐसा खुश हो रहा था, मानो इस वाह-वाह का यथार्थ में वही अधिकारी है। दो-एक अंग्रेज़ी पढ़े हुए नवयुवक इन व्यवहारों से उदासीन थे। वे इस गंवार मण्डली में बोलना अथवा सम्मिलित होना अपनी प्रतिष्ठा के प्रतिकूल समझते थे।

आज बुद्धिराम के बड़े लड़के सुखराम का तिलक आया है। यह उसी का उत्सव है। घर भीतर स्त्रियाँ गा रही थीं और रूपा मेहमानों के लिए भोजन के प्रबन्ध में व्यस्त थी। भट्टियों पर कड़ाह चढ़ रहे थे। एक में पूड़ियाँ- कचौड़ियाँ निकल रही थीं, दूसरे में अन्य पकवान बनते थे। एक बड़े हण्डे में मसालेदार तरकारी पक रही थी। धी और मसाले की क्षुधावर्द्धक सुगन्ध चारों ओर फैली हुई थी।

बूढ़ी काकी अपनी कोठरी में शोकमय विचार की भांति बैठी हुई थी। यह स्वाद-मिश्रित सुगन्धि उन्हें बेचैन कर रही थी। वे मन-ही-मन विचार कर रही थीं, सम्भवत: मुझे पूड़ियाँ न मिलेंगी। इतनी देर हो गयी, कोई भोजन लेकर नहीं आया। । मालूम होता है, सब लोग भोजन कर चुके हैं। मेरे लिए कुछ न बचा। यह सोचकर उन्हें रोना आया, परन्तु अपशकुन के भय से वह न रो सकीं।

"आहा! कैसी सुगन्धि है। अब मुझे कौन पूछता है? जब रोटियों के ही लाले पड़ें, तब ऐसे भाग्य कहाँ कि भर-पेट पूड़ियाँ मिलें ?" यह विचार कर उन्हें रोना आया, कलेजे में हूक-सी उठने लगी। परन्तु रूपा के भय से उन्होंने फिर मौन धारण कर लिया।

बूढ़ी काकी देर तक इन्हीं दु:खदायक विचारों में डूबी रहीं। घी और मसालों की सुगन्धि रह-रहकर मन को आपे से बाहर किये देती थी। मुँह में पानी भर-भर आता था। पूड़ियों का स्वाद स्मरण करके हृदय में गुदगुदी होने लगती थी। किसे पुकारूँ, आज लाड़ली बेटी भी नहीं आयी। दोनों छोकरे सदा दिक किया करते हैं। आज उनका भी कहीं पता नहीं। कुछ मालूम तो होता कि क्या बन रहा है।

बूढ़ी काकी की कल्पना में पूड़ियों की तस्वीर नाचने लगी। खूब लाल-लाल, फूली-फूली, नरम-नरम होंगी। रूपा ने भली-भांति मोयन दिया होगा। कचौड़ियों में अजवाइन और इलायची की महक आ रही होगी। एक पूड़ी मिलती, तो जरा हाथ में लेकर देखती। क्यों न चलकर कड़ाह के सामने ही बैठूँ। पूड़ियाँ छन-छनकर तैरती होंगी। कड़ाह से गरम-

गरम निकालकर थाल में रखी जाती होंगी । फूल हम घर में भी सूंघ सकते हैं, परन्तु वाटिका में कुछ और ही बात होती है। इस प्रकार निर्णय करके बूढ़ी काकी उकड़ू बैठकर हाथों के बल सरकती हुई कठिनाई से चौखट से उतरीं और धीरे-धीरे रेंगती हुई कड़ाह के पास आ बैठीं। यहाँ आने पर उन्हें उतना ही धैर्य हुआ, जितना भूखे कुत्ते को खाने वाले के सम्मुख बैठने में होता है !

रूपा उस समय कार्यभार से उद्विग्न हो रही थी । कभी इस कोठे में जाती, कभी उस कोठे में, कभी कड़ाह के पास आती, कभी भण्डार में जाती । किसी ने बाहर से आकर कहा–"महाराज ठण्डाई माँग रहे हैं ।" ठण्डाई देने लगी । इतने में फिर किसी ने कहा–"भाट आया है, उसे कुछ दे दो ।" भाट के लिए सीधा निकाल रही थी कि एक तीसरे आदमी ने आकर पूछा– "अभी भोजन तैयार होने में कितना विलम्ब है । जरा ढोल-मजीरा उतार दो ।" बेचारी अकेली स्त्री दौड़ते-दौड़ते व्याकुल हो रही थी, झुंझलाती थी, कुढ़ती थी, परन्तु क्रोध प्रकट करने का अवसर न पाती थी। भय होता, कहीं पड़ोसिनें यह न कहने लगें कि इतने में उबल पड़ी । प्यास से स्वयं उसका कण्ठ सूख रहा था, गरमी के मारे फुँकी जाती थी, परन्तु इतना अवकाश भी नहीं था कि जरा पानी पी ले अथवा पंखा लेकर झले। यह भी खटका था कि जरा आंख हटी और चीज़ों की लूट मची ।

इस अवस्था में उसने बूढ़ी काकी को कड़ाह के पास बैठी देखा, तो जल गयी । क्रोध न रुक सका । इसका भी ध्यान न रहा कि पड़ोसिनें बैठी हुई मन में क्या कहेंगी, पुरुषों में लोग सुनेंगे, तो क्या कहेंगे । जिस प्रकार मेंढक केंचुए पर झपटता है, उसी प्रकार वह बूढ़ी काकी पर झपटी और उन्हें दोनों हाथों से झटककर बोली– "ऐसे पेट में आग लगे, पेट है या भाड़? कोठरी में बैठते हुए क्या दम घुटता है? अभी मेहमानों ने नहीं खाया, भगवान् को भोग नहीं लगा, तब तक धैर्य न हो सका? आकर छाती पर सवार हो गयी । जल जाये ऐसी जीभ । दिन-भर खाती न होती, तो न जाने किसकी हाँडी में मुँह डालती ? गाँव देखेगा, तो कहेगा कि बुढ़िया भर-पेट खाने को नहीं पाती, तभी तो इस तरह मुँह बाये फिरती है। डायन न मरे न माँचा छोड़े । नाम बेचने पर लगी है। नाक कटवाकर दम लेगी । इतना ठूँसती है, न जाने कहाँ भस्म हो जाता है। लो! भला चाहती हो, तो जाकर कोठरी में बैठो, जब घर के लोग खाने लगेंगे, तब तुन्हें भी मिलेगा। तुम कोई देवी नहीं हो कि चाहे किसी के मुँह में पानी न जाये , परन्तु तुम्हारी पूजा पहले ही हो जाये।"

बूढ़ी काकी ने सिर न उठाया; न रोईं, न बोलीं। चुपचाप रेंगती हुई अपनी कोठरी में चली गयीं । आघात ऐसा कठोर था कि हृदय और मस्तिष्क की सम्पूर्ण शक्तियाँ सम्पूर्ण विचार और सम्पूर्ण भार उसी ओर आकर्षित हो गये थे । नदी में जब कगार का कोई वृहत् खण्ड कटकर गिरता है, तो आस-पास का जल-समूह चारों ओर से उसी स्थान को पूरा करने के लिए दौड़ता है।

3

भोजन तैयार हो गया । आंगन में पत्तल पड़ गयीं, मेहमान खाने लगे। स्त्रियों ने जेवनार-गीत गाना आरम्भ कर दिया। । मेहमान के नाई और सेवकगण भी उसी मण्डली के साथ, किन्तु कुछ हटकर भोजन करने बैठे थे, परन्तु सभ्यतानुसार जब तक सब-के-सब खा

न चुकें, कोई उठ नहीं सकता था । दो-एक मेहमान, जो कुछ पढ़े-लिखे थे, सेवकों के दीर्घाहार पर झुंझला रहे थे। वे इस बन्धन को व्यर्थ और बे-सिर-पैर की बात समझते थे।

बूढ़ी काकी अपनी कोठरी में जाकर पश्चात्ताप कर रही थीं कि मैं कहाँ-से-कहाँ गयी। उन्हें रूपा पर क्रोध नहीं था। अपनी जल्दबाजी पर दु:ख था। सच ही तो है, जब तक मेहमान लोग भोजन न कर चुकेंगे, घरवाले कैसे खायेंगे। मुझसे इतनी देर भी नहीं रहा गया। सबके सामने पानी उतर गया। अब जब तक कोई बुलाने न आयेगा, न जाऊँगी।

मन-ही-मन इसी प्रकार का विचार कर वह बुलावे की प्रतीक्षा करने लगीं। परन्तु घी की रुचिकर सबास बड़ी ही धैर्य-परीक्षक प्रतीत हो रही थी। उन्हें एक-एक पल एक-एक युग के समान मालूम होता था। अब पत्तल बिछ गयी होंगी। अब मेहमान आ गये होंगे। लोग हाथ-पैर धो रहे हैं, नाई पानी दे रहा है। मालूम होता है, लोग खाने बैठ गये। जेवनार गाया जा रहा है, धीरे-धीरे एक गीत गुनगुनाने लगीं। उन्हें मालूम हुआ कि मुझे गाते देर हो गयी। क्या इतनी देर तक लोग भोजन कर ही रहे होंगे। किसी की आवाज़ नहीं सुनायी देती, अवश्य ही लोग खा-पीकर चले गये। मुझे कोई बुलाने नहीं आया। रूपा चिढ़ गयी है, क्या जाने न बुलाये। सोचती हो कि आप ही आयेंगी, वह कोई मेहमान तो नहीं, जो उन्हें बुलाऊँ। बूढ़ी काकी चलने के लिए तैयार हुई। यह विश्वास कि एक मिनट में पूड़ियाँ और मसालेदार तरकारियाँ सामने आयेंगी, उनकी स्वादेन्द्रियों को गुदगुदाने लगा। उन्होंने मन में तरह-तरह के मंसूबे बाँधे– तरकारी से पूड़ियाँ खाऊँगी, फिर दही और शक्कर से, कचौड़ियाँ रायते के साथ मजेदार मालूम होंगी। चाहे कोई बुरा माने चाहे भला , मैं तो माँग-माँगकर खाऊँगी। यही न लोग कहेंगे कि इन्हें विचार नहीं ? कहा करें, इतने दिन बाद पूड़ियाँ मिल रही हैं, तो मुँह जूठा करके थोड़े ही उठ आऊँगी।।

वह उकड़ू बैठकर हाथों के बल सरकती हुई आँगन में आयीं। परन्तु हाय दुर्भाग्य ! अभिलाषा ने अपने पुराने स्वभाव के अनुसार समय की मिथ्या कल्पना की थी! मेहमान मण्डली अभी बैठी हुई थी। कोई खाकर उगलियाँ चाटता, कोई तिरछे नेत्रों से देखता था कि और लोग अभी खा रहे हैं या नहीं। कोई इस चिन्ता में था कि पत्तल पर पूड़ियाँ छुटी जाती हैं, किसी तरह इन्हें भीतर रख लेता। कोई दही खाकर जीभ चटकारता था, परन्तु दूसरा दोना माँगते संकोच करता था कि इतने में बूढ़ी काकी रेंगती हुई उनके बीच में जा पहुँची। कई आदमी चौंककर उठ खड़े हुए। पुकारने लगे-अरे यह बुढ़िया कौन है? यह कहाँ से आ गयी? देखो, किसी को छू न दे।

पण्डित बुद्धिराम काकी को देखते ही क्रोध से तिल- मिला गये। पूड़ियों का थाल लिये खड़े थे, थाल को जमीन पर पटक दिया और जिस प्रकार निर्दय महाजन अपने किसी बेईमान और भगोड़े कर्जदार को देखते ही झपटकर उसका टेटुआ पकड़ लेता है, उसी तरह लपककर उन्होंने बूढ़ी काकी के दोनों हाथ पकड़े और घसीटते हुए लाकर उन्हें अंधेरी कोठरी में धम से पटक दिया। बूढ़ी काकी की आशा रूपी वाटिका लू के एक ही झोंके से नष्ट-विनष्ट हो गयी।

मेहमानों ने भोजन किया। घरवालों ने भोजन किया, बाजेवाले, धोबी, चमार भी भोजन कर चुके, परन्तु बूढ़ी काकी को किसी ने न पूछा। बुद्धिराम और रूपा दोनों ही बूढ़ी काकी को उनकी निर्लज्जता के लिए दण्ड देने का निश्चय कर चुके थे। उनके बुढ़ापे पर,

दीनता पर, हतज्ञान पर किसी को करुणा न आती थी। । अकेली लाड़ली उनके लिए कुढ़ रही थी।

लाड़ली को काकी से अत्यन्त प्रेम था। बेचारी भोली लड़की थी। बाल-विनोद और चंचलता की उसमें गन्ध तक न थी। दोनों बार जब उसके माता-पिता ने काकी को निर्दयता से घसीटा, तो लाड़ली का हृदय ऐंठ कर रह गया। वह झुंझला रही थी कि यह लोग काकी को क्यों बहुत-सी पूड़ियाँ नहीं दे देते ? क्या मेहमान सब की सब खा जायेंगे ? और यदि काकी ने मेहमानों से पहले खा लिया, तो क्या बिगड़ जायेगा? वह काकी के पास जाकर उन्हें धैर्य देना चाहती थी, परन्तु माता के भय से न जाती थी। उसने अपने हिस्से की पूड़ियाँ बिल्कुल न खायी थीं। अपनी गुड़ियों की पिटारी में बन्द कर रखी थीं। वह उन पूड़ियों को काकी के पास ले जाना चाहती थी। उसका हृदय अधीर हो रहा था। बूढ़ी काकी मेरी बात सुनते ही उठ बैठेंगी, पूड़ियाँ देखकर कैसी प्रसन्न होंगी! मुझे खूब प्यार करेंगी।

4

रात के ग्यारह बज गये थे। रूपा आँगन में पड़ी सो रही थी। लाड़ली की आँखों में नींद न आती थी। काकी को पूड़ियाँ खिलाने की खुशी उसे सोने न देती थी। उसने गुड़ियों की पिटारी सामने ही रखी थी। जब विश्वास हो गया कि अम्मा अब सो रही हैं, तो वह चुपके से उठी और विचारने लगी, कैसे चलूँ। चारों ओर अंधेरा था। केवल चूल्हे में आग चमक रही थी, चूल्हे के पास एक कुत्ता लेटा हुआ था। लाड़ली की दृष्टि द्वार के सामने वाले नीम की ओर गयी। उसे मालूम हुआ कि उस पर हनुमानजी बैठे हुए हैं। उनकी पूँछ, उनकी गदा, सब स्पष्ट दिखाई दे रही है। मारे भय के उसने आँखें बन्द कर लीं। इतने में कुत्ता उठ बैठा, लाड़ली को साहस हुआ। कई सोये हुए मनुष्यों के बदले एक भागता हुआ कुत्ता उसके लिए अधिक धैर्य का कारण हुआ। उसने पिटारी उठायी और बूढ़ी काकी की ओर चली।

5

बूढ़ी काकी को केवल इतना स्मरण था कि किसी ने मेरे हाथ पकड़कर घसीटे, फिर ऐसा मालूम हुआ, जैसे कोई पहाड़ पर उड़ाये लिये जाता है। उनके पैर बार-बार पत्थरों से टकराये। तब किसी ने उन्हें पहाड़ पर से पटका, वे मूर्छित हो गयीं।

जब वे सचेत हुई, तो किसी की जरा आहट भी न मिलती थी। समझीं कि सब लोग खा-पीकर सो गये और उनके साथ मेरी तक़दीर भी सो गयी। रात कैसे कटेगी? राम ! क्या खाऊं? पेट में अग्नि धधक रही है ! हा ! किसी ने मेरी सुध न ली ! क्या मेरा ही पेट काटने से धन जुड़ जायेगा? इन लोगों को इतनी भी दया नहीं आती कि जाने बुढ़िया कब मर जाये ? उसका जी क्यों दुखावें ? मैं पेट की रोटियाँ ही खाती हूँ कि और कुछ ? इस पर यह हाल। मैं अन्धी अपाहिज ठहरी, न कुछ सुनूँ न बूझूँ। यदि आँगन में चली गयी तो क्या बुद्धिराम से इतना कहते न बनता था कि काकी अभी लोग खा रहे हैं, फिर आना। मुझे घसीटा, पटका। उन्हीं पूड़ियों के लिए रूपा ने सबके सामने गालियाँ दीं। उन्हीं पूड़ियों के लिए इतनी दुर्गति करने पर भी उनका पत्थर का कलेजा न पसीजा। सबको खिलाया मेरी बात तक न पूछी ! जब तब ही न दीं , तब अब क्या देंगे ?

यह विचार कर काकी निराशमय सन्तोष के साथ लेट गयीं। ग्लानि से गला भर- भर आता था, परन्तु मेहमानों के भय से रोती न थीं।

सहसा उनके कानों में आवाज़ आयी–"काकी उठो, मैं पूड़ियाँ लायी हूँ।" काकी ने लाड़ली की बोली पहचानी। चटपट उठ बैठीं। दोनों हाथों से लाड़ली को टटोला और उसे गोद में बैठा लिया। लाड़ली ने पूड़ियाँ निकालकर दीं। काकी ने पूछा-"क्या तुम्हारी अम्मा ने दी हैं?"

लाड़ली ने कहा–"नहीं, यह मेरे हिस्से की हैं।"

काकी पूड़ियों पर टूट पड़ीं। पांच मिनट में पिटारी खाली हो गयी। लाड़ली ने पूछा– काकी पेट भर गया ?"

जैसे थोड़ी-सी वर्षा ठण्डक के स्थान पर और भी गरमी पैदा कर देती है, उसी भाँति इन थोड़ी-सी पूड़ियों ने काकी की क्षुधा को और इच्छा को उत्तेजित कर दिया था। बोलीं– "नहीं बेटी, जाकर अम्मा से और माँग लाओ।"

लाड़ली ने कहा–"अम्मा सोती हैं, जगाऊँगी , तो मारेंगी।"

काकी ने पिटारी को फिर टटोला। उसमें कुछ खुर्चन गिरे थे। उन्हें निकालकर वे खा गयीं। बार-बार होंठ चाटती थीं। चटखारे भरती थीं।

हृदय मसोस रहा था कि और पूड़ियाँ कैसे पाऊँ। सन्तोष-सेतु जब टूट जाता है, तब इच्छा का बहाव अपरिमित हो जाता है। मतवालों को मद का स्मरण करना उन्हें मदान्ध बनाता है। काकी का अधीर मन इच्छा के प्रबल प्रवाह में बह गया। उचित और अनुचित का विचार जाता रहा। वे कुछ देर तक उस इच्छा को रोकती रहीं। सहसा लाड़ली से बोलीं– "मेरा हाथ पकड़कर वहाँ ले चल, जहाँ मेहमानों ने बैठकर भोजन किया है।"

लाड़ली उनका अभिप्राय न समझ सकी। उसने काकी का हाथ पकड़ा और ले जाकर जूठी पत्तलों के पास बैठा दिया। दीन, क्षुधातुर, हत-ज्ञान बुढ़िया पत्तलों से पूड़ियों के टुकड़े चुन–चुन कर भक्षण करने लगी। ओह, दही कितना स्वादिष्ट था, कचौरियाँ कितनी सलौनी, खस्ता, कितनी सुकोमल। काकी बुद्धिहीन होते हुए भी इतना जानती थीं कि मैं वह काम कर रही हूँ, जो मुझे कदापि न करना चाहिए। मैं दूसरों की जूठी पत्तल चाट रही हूँ। परन्तु बुढ़ापा तृष्णा रोग का अन्तिम समय है, जब सम्पूर्ण इच्छाएँ एक ही केन्द्र पर आ लगती हैं। बूढ़ी काकी में यह केन्द्र उनकी स्वादेन्द्रिय थी।

ठीक उसी समय रूपा की आँखें खुलीं। उसे मालूम हुआ कि लाड़ली मेरे पास नहीं है। वह चौंकी, चारपाई के इधर-उधर ताकने लगी कि कहीं नीचे तो नहीं गिर पड़ी। उसे वहाँ न पाकर वह उठ बैठी, तो क्या देखती है कि लाड़ली जूठी पत्तलों के पास चुपचाप खड़ी है और बूढ़ी काकी पत्तलों पर से पूड़ियों के टुकड़े उठा-उठाकर खा रही हैं।

रूपा का हृदय सन्न हो गया। किसी गाय की गर्दन पर छुरी चलते देखकर जो अवस्था उसकी होती, वही उस समय हुई। एक ब्राह्मणी दूसरों की जूठी पत्तल टटोले, इससे अधिक शोकमय दृश्य असम्भव था। पूड़ियों के कुछ ग्रासों के लिए उसकी चचेरी सास ऐसा पतित और निकृष्ट कर्म कर रही है। यह वह दृश्य था, जिसे देखकर देखने वालों के हृदय काँप उठते हैं। ऐसा प्रतीत होता, मानो जमीन रुक गयी, आसमान चक्कर खा रहा है। संसार पर कोई नयी विपत्ति आने वाली है। रूपा को क्रोध न आया। शोक के सम्मुख क्रोध कहाँ? करुणा

और भय से उसकी आँखें भर आयीं। इस अधर्म के पाप का भागी कौन है? उसने सच्चे हृदय से गगन-मण्डल की ओर हाथ उठाकर कहा–"परमात्मा! मेरे बच्चों पर दया करो। बस, अधर्म का दण्ड मुझे मत दो, नहीं तो मेरा सत्यानाश हो जायेगा।"

रूपा को अपनी स्वार्थपरता और अन्याय इस प्रकार प्रत्यक्ष रूप में भी न देख पड़े थे . वह सोचने लगी-हाय! कितनी निर्दयी हूँ। जिसकी सम्पत्ति से मुझे दो सौ रुपया वार्षिक आय हो रही है, उसकी यह दुर्गति! और मेरे कारण! हे दयामय भगवान्! मुझसे बड़ी भारी चूक हुई है, मुझे क्षमा करो। आज मेरे बेटे का तिलक था। सैकड़ों मनुष्यों ने भोजन पाया। मैं उनके इशारे की दासी बनी रही। अपने नाम के लिए सैकड़ों रुपये व्यय कर दिये। परन्तु जिसकी बदौलत हज़ारों रुपये खाये, उसे इस उत्सव में भी भर-पेट भोजन न दे सकी। केवल इसी कारण तो, वह वृद्धा असहाय है।

रूपा ने दिया जलाया, अपने भण्डार का द्वार खोला और एक थाली में सम्पूर्ण सामग्रियाँ सजाकर लिये हुए बूढ़ी काकी की ओर चली।

आधी रात जा चुकी थी, आकाश पर तारों के थाल सजे हुए थे और उन पर बैठे हुए देवगण स्वर्गीय पदार्थ सजा रहे थे, परन्तु उनमें किसी को वह परमानन्द प्राप्त न हो सकता था, जो बूढ़ी काकी को अपने सम्मुख थाल देखकर प्राप्त हुआ। रूपा ने कण्ठावरुद्ध स्वर में कहा– "काकी! उठो, भोजन कर लो। मुझसे बड़ी भूल हुई, उसका बुरा न मानना। परमात्मा से प्रार्थना कर दो कि वह मेरा अपराध क्षमा कर दें।"

भोले- भाले बच्चों की भाँति , जो मिठाइयाँ पाकर मार और तिरस्कार सब भूल जाता है, बूढ़ी काकी वैसे ही सब भुलाकर बैठी हुई खाना खा रही थीं। उनके एक-एक रोयें से सच्ची सदिच्छाएँ निकल रही थीं और रूपा बैठी स्वर्गीय दृश्य का आनन्द लेने में निमग्न थी।

राजा हरदौल

बुन्देलखण्ड में ओरछा पुराना राज्य है। इसके राजा बुन्देले हैं। इन बुन्देलों ने पहाड़ों की घाटियों में अपना जीवन बिताया है। एक समय ओरछे के राजा जुझार सिंह थे । ये बड़े साहसी और बुद्धिमान् थे । शाहजहाँ उस समय दिल्ली के बादशाह थे। जब लोदी ने बलवा किया और वह शाही मुल्क को लूटता-पाटता ओरछे की ओर आ निकला, तब राजा जुझार सिंह ने उससे मोर्चा लिया । राजा के इस काम से गुणग्राही शाहजहाँ बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने तुरन्त ही राजा को दक्खिन का शासन भार सौंपा । उस दिन ओरछे में बड़ा आनन्द मनाया गया । शाही दूत खिलअत और सनद लेकर राजा के पास आया । जुझार सिंह को बड़े-बड़े काम करने का अवसर मिला । सफर की तैयारियाँ होने लगीं, तब राजा ने अपने छोटे भाई हरदौल सिंह को बुलाकर कहा–"भैया! मैं तो जाता हूँ। अब यह राज-पाट तुम्हारे सुपुर्द है। तुम भी इसे जी से प्यार करना । न्याय ही राजा का सबसे बडा सहायक है। न्याय की गढी में कोई शत्रु नहीं घुस सकता, चाहे वह रावण की सेना या इन्द्र का बल लेकर आये । पर न्याय वही सच्चा है, जिसे प्रजा भी न्याय समझे। तुम्हारा काम केवल न्याय ही करना न होगा, बल्कि प्रजा को अपने न्याय का विश्वास भी दिलाना होगा । और मैं तुम्हें क्या समझाऊँ, तुम स्वयं समझदार हो ।

यह कहकर उन्होंने अपनी पगड़ी उतारी और हरदौल सिंह के सिर पर रख दी । हरदौल रोता हुआ उनके पैरों से लिपट गया। इसके बाद राजा अपनी रानी से विदा होने के लिए रनिवास आये । रानी दरवाजे पर खड़ी रो रही थी । उन्हें देखते ही पैरों पर गिर पड़ी । जुझार सिंह ने उठाकर उसे छाती से लगाया और कहा–"प्यारी! यह रोने का समय नहीं है । बुन्देलों की स्त्रियाँ ऐसे अवसरों पर रोया नहीं करतीं। ईश्वर ने चाहा, तो हम-तुम जल्द मिलेंगे । मुझ पर ऐसी ही प्रीति रखना। मैंने राजपाट हरदौल को सौंपा है, वह अभी लड़का है। उसने अभी दुनिया नहीं देखी है। अपनी सलाहों से उसकी मदद करती रहना ।"

रानी की जबान बन्द हो गयी । वह अपने मन में कहने लगी–'हाय, यह कहते हैं, बुन्देलों की स्त्रियाँ ऐसे अवसरों पर रोया नहीं करतीं। शायद उनके हृदय नहीं होता, या अगर होता है, तो उसमें प्रेम नहीं होता ।' रानी कलेजे पर पत्थर रखकर आँसू पी गयी और हाथ जोड़कर राजा की ओर मुसकराती हुई देखने लगी । पर क्या वह मुसकराहट थी? जिस तरह अंधेरे मैदान में मशाल की रोशनी अंधेरे को और भी अथाह कर देती है, उसी तरह रानी की मुसकराहट उसके मन के अथाह दु:ख को और भी प्रकट कर रही थी ।

जुझार सिंह के चले जाने के बाद हरदौल सिंह राज करने लगा । थोड़े ही दिनों में उसके न्याय और प्रजावात्सल्य ने प्रजा का भन हर लिया । लोग जुझार सिंह को भूल गये । जुझार सिंह के शत्रु भी थे और मित्र भी, पर हरदौल सिंह का कोई शत्रु न था, सब मित्र ही थे। वह

ऐसा हँसमुख और मधुरभाषी था कि उससे जो बातें कर लेता, वही जीवन-भर उसका भक्त बना रहता। राज- भर में ऐसा कोई न था, जो उसके पास तक न पहुँच सकता हो। रात-दिन उसके दरबार का फाटक सबके लिए खुला रहता था। ओरछे को कभी ऐसा सर्वप्रिय राजा नसीब न हुआ था। वह उदार था, न्यायी था, विद्या और गुण का ग्राहक था। पर सबसे बड़ा गुण जो उसमें था, वह उसकी वीरता थी। उसका वह गुण हद दर्जे को पहुँच गया था। जिस जाति के जीवन का अवलम्बन तलवार पर है, वह अपने राजा के किसी गुण पर उतना नहीं रीझती, जितना उसकी वीरता पर। हरदौल अपने गुणों से अपनी प्रजा के मन का भी राजा हो गया, जो मुल्क और माल पर राज करने से भी कठिन है। इस प्रकार एक वर्ष बीत गया। उधर दक्खिन में जुझार सिंह ने अपने प्रबन्ध से चारों ओर शाही दब-दबा जमा दिया, इधर ओरछे में हरदौल ने प्रजा पर मोहन-मन्त्र फूँक दिया।

2

फाल्युन का महीना था, अबीर और गुलाल से जमीन लाल हो रही थी। कामदेव का प्रभाव लोगों को भड़का रहा था। रबी ने खेतों में सुनहला फर्श बिछा रखा था और खलिहानों में सुनहले महल उठा दिये थे। सन्तोष इस सुनहले फर्श पर इठलाता फिरता था और निश्चिन्तता इस सुनहले महल में तानें अलाप रही थी। इन्हीं दिनों दिल्ली का नामवर फिकैत कादिर खाँ ओरछे आया। बड़े-बड़े पहलवान उसका लोहा मान गये थे। दिल्ली से ओरछे तक सैकड़ों मर्दानगी के मद से मतवाले उसके सामने आये , पर कोई उससे जीत न सका। उसमे लड़ना भाग्य से नहीं, बल्कि मौत से लड़ना था। वह किसी इनाम का भूखा न था। जैसा ही दिल का दिलेर था, वैसा ही मन का राजा था। ठीक होली के दिन धूमधाम से ओरछे में सूचना दी कि "खुदा का शेर, दिल्ली का कादिर खाँ, ओरछे आ पहुँचा है। जिसे अपनी जान भारी हो, आकर अपने भाग्य का निपटारा कर ले।" ओरछे के बड़े-बड़े बुन्देले सूरमा यह घमण्ड-भरी वाणी सुनकर गरम हो उठे। फाग और डफ की तान के बदले ढोल की वीर-ध्वनि सुनाई देने लगी। हरदौल का अखाड़ा ओरछे के पहलवानों और फिकैतों का सबसे बड़ा अड्डा था। सन्ध्या को यहाँ सारे शहर के सूरमा जमा हुए। कालदेव और भालदेव बुन्देलों की नाक थे, सैकडों मैदान मारे हुए। ये ही दोनों पहलवान कादिर खाँ का घमण्ड चूर करने के लिए गये।

दूसरे दिन किले के सामने तालाब के किनारे मैदान में ओरछे के छोटे-बड़े सभी जमा हुए। कैसे-कैसे सजीले अलबेले जवान थे, सिर पर खुशरंग बाँकी पगड़ी, माथे पर चन्दन का तिलक, आँखों में मर्दानगी का सरूर, कमर में तलवार। और कैसे-कैसे बूढ़े थे — तनी हुई मूँछें, सादी पर तिरछी पगड़ी, कानों में बँधी हुई दाढ़ियाँ, है देखने में तो बूढ़े, पर काम में जवान, किसी को कुछ न समझने वाले। उनकी मर्दानगी, चाल-ढाल नौजवानों को लजाती थी। हर एक के मुँह से वीरता की बातें निकल रही थीं। नौजवान कहते थे — देखें, आज ओरछे की लाज रहती है या नहीं। पर बूढ़े कहते—ओरछे की हार कभी नहीं हुई और न होगी। वीरों का यह जोश देखकर राजा हरदौल ने बड़े जोर से कह दिया–"ख़बरदार! बुन्देलों की लाज रहे या न रहे, पर उनकी प्रतिष्ठा में बल न पड़ने पाये। यदि किसी ने औरों को यह कहने का अवसर दिया कि ओरछे वाले तलवार से न जीत सके, तो धांधली कर बैठे

तो वह अपने को जाति का शत्रु समझे।"

सूर्य निकल आया था। एकाएक नगाड़े पर चोट पड़ी और आशा तथा भय ने लोगों के मन को उछालकर मुँह तक पहुँचा दिया। कालदेव और कादिर खाँ दोनों लंगोटा कसे शेरों की तरह अखाड़े में उतरे और गले मिल गये। तब दोनों तरफ से तलवारें निकलीं और दोनों के बगलों में चली गयीं। फिर बादल के दो टुकड़ों से बिजलियाँ निकलने लगीं। पूरे तीन घण्टे तक यही मालूम होता रहा कि दो अंगारे हैं। हज़ारों आदमी खड़े तमाशा देख रहे थे और मैदान में आधी रात का-सा सन्नाटा छाया था। हां, जब कभी कालदेव कोई गिरहदार हाथ चलाता या कोई पेंचदार वार बचा पाता, तो लोगों की गर्दन आप-ही-आप उठ जाती, पर किसी के मुँह से एक शब्द भी नहीं निकलता था। अखाड़े के अन्दर तलवारों की खींचा-तानी थी, पर देखने वालों के लिए अखाड़े से बाहर मैदान में इससे भी बढ़कर तमाशा था। बार-बार जातीय प्रतिष्ठा के विचार से मन के भावों को रोकना और प्रसन्नता या दु:ख का शब्द मुँह से बाहर न निकलने देना, मैं तलवारों के वार बचाने से अधिक कठिन काम था। एकाएक कादिर खाँ 'अल्लाहो अकबर' चिल्लाया, मानो बादल गरज उठा और उसके गरजते ही कालदेव के सिर पर बिजली गिर पड़ी।

कालदेव के गिरते ही बुन्देलों को सब्र न रहा। हर एक चेहरे पर निर्बल क्रोध और कुचले हुए घमण्ड की तस्वीर खिंच गयी। हज़ारों आदमी जोश में आकर अखाड़े पर दौड़े, पर हरदौल ने कहा-"ख़बरदार! अब कोई आगे न बढ़े।" इस आवाज़ ने पैरों के साथ जंजीर का काम किया। दर्शकों को रोककर जब वे अखाड़े में गये और कालदेव को देखा, तो आँखों में आँसू भर आये। जख्मी शेर जमीन पर पड़ा तड़प रहा था। उसके जीवन की तरह उसकी तलवार के दो टुकड़े हो गये थे।

आज का दिन बीता, रात आयी। पर बुन्देलों की आँख में नींद कहाँ।। लोगों ने करवटें बदलकर रात काटी। जैसे दुखित मनुष्य विकलता से सुबह की बाट जोहता है, उसी तरह बुन्देले रह-रहकर आकाश की तरफ देखते और उसकी धीमी चाल पर झुंझलाते थे।। उनके जातीय घमण्ड पर गहरा घाव लगा हुआ था। दूसरे दिन ज्यों ही सूर्य निकला, तीन लाख बुन्देले तालाब के किनारे पहुँचे। जिस समय भालदेव शेर की तरह अखाड़े की तरफ चला, दिलों में धड़कन-सी होने लगी। कल जब कालदेव अखाड़े में उतरा था, बुन्देलों के हौसले बढे हुए थे। पर आज वह बात न थी। हृदय में आशा की जगह डर धँसा हुआ था। जब कादिर खाँ कोई चुटीला वार करता, तो लोगों के दिल उछलकर होंठों तक आ जाते। सूर्य सिर पर चढ़ा आता था और लोगों के दिल बैठे जाते थे। इसमें कोई सन्देह नहीं कि भालदेव अपने भाई से फुर्तीला और तेज़ था। उसने कई बार कादिर खाँ को नीचा दिखाया, पर दिल्ली का निपुण पहलवान हर बार संभल जाता था।। पूरे तीन घण्टे तक दोनों बहादुरों में तलवारें चलती रहीं। एकाएक खट्टाके की आवाज़ हुई और भालदेव की तलवार के दो टुकड़े हो गये। राजा हरदौल अखाड़े के सामने खड़े थे। उन्होंने भालदेव की तरफ तेज़ी से अपनी तलवार फेंकी। भालदेव तलवार लेने के लिए झुका ही था कि कादिर खाँ की तलवार उसकी गर्दन पर आ पड़ी। घाव गहरा न था, केवल एक 'चरका' था, पर उसने लड़ाई का फैसला कर दिया।

हताश बुन्देले अपने-अपने घरों को लौटे। यद्यपि भालदेव अब भी लड़ने को तैयार था,

पर हरदौल ने समझाकर कहा कि "भाइयो! हमारी हार उसी समय हो गयी, जब हमारी तलवार ने जवाब दे दिया। यदि हम कादिर खाँ की जगह होते, तो निहत्थे आदमी पर वार न करते और जब तक हमारे शत्रु के हाथ में तलवार न आ जाती, हम उस पर हाथ न उठाते, पर कादिर खाँ में यह उदारता कहाँ। बलवान् शत्रु का सामना करने में उदारता को ताक पर रख देना पड़ता है। तो भी हमने दिखा दिया है कि तलवार की लड़ाई में हम उसके बराबर हैं और अब हमको यह दिखाना रहा है कि हमारी तलवार में भी वैसा ही जौहर है।" इसी तरह लोगों को तसल्ली देकर राजा हरदौल रनवास को गये।

कुलीना ने पूछा–"लाला! आज दंगल का क्या रंग रहा ?"

हरदौल ने सिर झुकाकर जवाब दिया-"आज भी वही कल-सा ही हाल रहा।"

कुलीना–"क्या भालदेव मारा गया ?"

हरदौल–"नहीं , जान से तो नहीं , पर हार हो गयी।"

कुलीना–"तो अब क्या करना होगा?"

हरदौल–"मैं स्वयं इसी सोच में हूँ। आज तक ओरछे को कभी नीचा न देखना पड़ा था। हमारे पास धन न था, पर अपनी वीरता के सामने हम राज और धन को कोई चीज़ नहीं समझते थे। अब हम किस मुँह से अपनी वीरता का घमण्ड करेंगे? ओरछे की और बुन्देलों की लाज अब जाती है।"

कुलीना–"क्या अब कोई आस नहीं है?"

हरदौल–"हमारे पहलवानों में वैसा कोई नहीं है, जो उससे बाजी ले जाये। भालदेव की हार ने बुन्देलों की हिम्मत तोड़ दी है। आज सारे शहर में शोक छाया हुआ है। सैकड़ों घरों में आग नहीं जली। चिराग रोशन नहीं हुआ। हमारे देश और जाति की वह चीज़, जिससे हमारा मान था, अब अन्तिम साँस ले रही है। भालदेव हमारा उस्ताद था। उसके हारने के बाद मेरा मैदान में आना धृष्टता है, पर बुन्देलों की साख जाती है, तो मेरा सिर भी उसके साथ जायेगा। कादिर खाँ बेशक अपने हुनर में एक ही है, पर हमारा भालदेव कभी उससे कम नहीं। उसकी तलवार यदि भालदेव के हाथ में होती, तो मैदान ज़रूर उसके हाथ में रहता। ओरछे में केवल एक तलवार है, जो कादिर खाँ की तलवार का मुँह तोड़ सकती है। वह भैया की तलवार है। यदि तुम ओरछे की नाक रखना चाहती हो, तो उसे मुझे दे दो। यह हमारी अन्तिम चेष्टा होगी। यदि इस बार भी हार हुई, तो ओरछे का नाम सदैव के लिए डूब जायेगा।"

कुलीना सोचने लगी कि तलवार इनको दूँ या न दूँ। राजा रोक गये हैं। उनकी आज्ञा थी कि किसी दूसरे की परछाई भी उस पर न पड़ने पाये। क्या ऐसी दशा में मैं उनकी आज्ञा का उल्लंघन करूँ, तो वे नाराज होंगे? कभी नहीं। जब वे सुनेंगे कि मैंने कैसे कठिन समय में तलवार निकाली है, तो उन्हें सच्ची प्रसन्नता होगी। बुन्देलों की आन किसको इतनी प्यारी है? उससे ज़्यादा ओरछे की भलाई चाहने वाला कौन होगा? इस समय उनकी आज्ञा का उल्लंघन करना ही आज्ञा मानना है। यह सोचकर कुलीना ने तलवार हरदौल को दे दी।

सवेरा होते ही यह खबर फैल गयी कि राजा हरदौल कादिर खाँ से लड़ने के लिए जा रहे हैं। इतना सुनते ही लोगों में सनसनी-सी फैल गयी और चौंक उठे। पागलों की तरह लोग अखाड़े की ओर दौड़े। हर एक आदमी कहता था कि जब तक हम जीते हैं, महाराज

को लड़ने नहीं देंगे। पर जब लोग अखाड़े के पास पहुँचे, तो देखा कि अखाड़े में बिजलियाँ-सी चमक रही हैं । बुन्देलों के दिलों पर उस समय जैसी बीत रही थी, उसका अनुमान करना कठिन है । उस समय लम्बे-चौड़े मैदान में जहाँ तक निगाह जाती थी, आदमी नजर आते थे । पर चारों तरफ सन्नाटा था । हर एक आँख अखाड़े की तरफ लगी हुई थी और हर एक का दिल हरदौल की मंगलकामना के लिए ईश्वर से प्रार्थी था । कादिर खाँ का एक-एक वार हज़ारों दिलों के टुकड़े कर देता था और हरदौल की एक-एक काट से मन में आनन्द की लहरें उठती थीं। अखाड़े में दो पहलवानों का सामना था और अखाड़े के बाहर आशा और निराशा का । आखिर घड़ियाल ने पहला पहर बजाया और हरदौल की तलवार बिजली बनकर कादिर के सिर पर पड़ी। यह देखते ही बुन्देले मारे आनन्द के उन्मत्त हो गये । किसी को सुधि न रही । कोई किसी से गले मिलता, कोई उछलता और कोई छलांगे मारता था। हज़ारों आदमियों पर वीरता का नशा छा गया । तलवारें स्वयं म्यान से निकल पड़ीं, भाले चमकने लगे । जीत की खुशी में सैकड़ों जानें भेंट हो गयीं । पर जब हरदौल अखाड़े से बाहर आये और उन्होंने बुन्देलों की ओर तेज़ निगाहों से देखा, तो आन-की-आन में लोग संभल गये । तलवारें म्यान में जा छिपीं। खयाल आ गया । यह खुशी क्यों, यह उमंग क्यों, और यह पागलपन किसलिए? बुन्देलों के लिए यह कोई नयी बात नहीं हुई । इस विचार ने लोगों का दिल ठण्डा कर दिया । हरदौल की इस वीरता ने उसे हर एक बुन्देले के दिल में मान-प्रतिष्ठा की उस ऊँची जगह पर बिठाया, जहाँ न्याय और उदारता भी उसे न पहुँचा सकती थी। वह पहले से ही सर्वप्रिय था, और अब वह अपनी जाति का वीरवर और बुन्देला, दिलावरी का सिरमौर बन गया ।

3

राजा जुझार सिंह ने भी दक्षिण में अपनी योग्यता का परिचय दिया । वे केवल लड़ाई में ही वीर न थे, बल्कि राज्य शासन में भी अद्वितीय थे। उन्होंने अपने सुप्रबन्ध में दक्षिण प्रान्तों को बलवान् राज्य बना दिया और वर्ष- भर के बाद बादशाह से आज्ञा लेकर वे ओरछे की तरफ चले । ओरछे की याद उन्हें सदैव बेचैन करती रही। आह ओरछा! वह दिन कब आयेगा कि फिर तेरे दर्शन होंगे! राजा मंजिलें मारते चले आते थे; न भूख थी, न प्यास, ओरछे वालों की मोहब्बत खींचे लिये आती थी। यहाँ तक कि ओरछे के जंगलों में आ पहुँचे साथ के आदमी पीछे छूट गये । दोपहर का समय था । धूप तेज़ थी। वे घोड़े से उतरे और एक पेड़ की छाँह में जा बैठे। भाग्यवश आज हरदौल भी जीत की खुशी में शिकार खेलने निकले थे । सैकड़ों बुन्देला सरदार उनके साथ थे । सब अभिमान के नशे में चूर थे । उन्होंने राजा जुझार सिंह को अकेले बैठे हुए देखा, पर अपने घमण्ड में इतने डूबे हुए थे कि उनके पास तक न आये। समझा कोई यात्री होगा । हरदौल की आँखों ने भी धोखा खाया । घोड़े पर सवार अकड़े हुए जुझार सिंह के सामने आये और पूछना चाहते थे कि तुम कौन हो कि भाई से आँख मिल गयी । पहचानते ही घोड़े से कूद पड़े और उनको प्रणाम किया । राजा ने भी उठकर हरदौल को छाती से लगा लिया, पर छाती में अब भाई की मोहब्बत न थी। इसीलिए कि हरदौल दूर से नंगे पैर उनकी तरफ न दौड़ा, उसके सवारों ने दूर से ही उनकी अभ्यर्थना न की । सन्ध्या होते-होते दोनों भाई ओरछे पहुँचे । राजा के लौटने का समाचार

पाते ही नगर में प्रसन्नता की दुन्दुभी बजने लगी । हर जगह आनन्दोत्सव होने लगा और तुरताफुरती सारा शहर जगमगा उठा ।

आज रानी कुलीना ने अपने हाथों भोजन बनाया । नौ बजे होंगे । लौंडी ने आकर कहा–"महाराज! भोजन तैयार है।" दोनों भाई भोजन करने गये । सोने के थाल में राजा के लिए भोजन परोसा गया और चाँदी के थाल में हरदौल के लिए। कुलीना ने स्वयं भोजन बनाया था, स्वयं थाल परोसे थे और स्वयं ही सामने लायी थी, पर दोनों का चक्र कहो या भाग्य का दुर्दिन, उसने भूल से सोने का थाल हरदौल के आगे रख दिया और चाँदी का राजा के सामने। हरदौल ने कुछ ध्यान न दिया । वह वर्ष-भर से सोने के थाल में खाते-खाते उसका आदी हो गया था, पर जुझार सिंह तिलमिला गये । जबान से कुछ न बोले, पर तेवर बदल गये और मुँह लाल हो गया । रानी की तरफ घूरकर देखा और भोजन करने लगे, पर ग्रास विष मालूम होता था । दो-चार ग्रास खाकर उठ गये । रानी उनके तेवर देखकर डर गयी । आज कैसे पेम से उसने भोजन बनाया था, कितनी प्रतीक्षा के बाद यह शुभ दिन आया था, उसके उल्लास का कोई पारावार न था, पर राजा के तेवर देखकर उसके प्राण सूख गये । जब राजा उठ गये और उसने थाल को देखा, तो कलेजा धक्-से हो गया और पैरों तले से मिट्टी निकल गयी । उसने सिर पीट लिया-"ईश्वर! आज रात कुशलतापूर्वक कटे । मुझे शकुन अच्छे दिखाई नहीं देते ।""

राजा जुझार सिंह शीशमहल में लेटे। चतुर नाइन ने रानी का श्रृंगार किया और वह मुसकरा कर बोली-"कल महाराज से इसका इनाम लूँगी।" यह कहकर वह चली गयी। परन्तु कुलीना वहाँ से न उठी । वह गहरे सोच में पड़ी हुई थी । उनके सामने कौन-सा मुंह लेकर जाऊँ? नाइन ने नाहक मेरा श्रृंगार कर दिया । मेरा श्रृंगार देखकर वे खुश भी होंगे ? मुझसे इस समय अपराध हुआ है, मैं अपराधी हूँ, मेरा उनके पास इस समय बनाव- श्रृंगार करके जाना उचित नहीं । नहीं, नहीं, आज मुझे उनके पास भिखारिन के भेष में जाना चाहिए। मैं उनसे क्षमा माँगूँगी। इस समय मेरे लिए यही उचित है । यह सोचकर रानी बड़े शीशे के सामने खड़ी हो गयी । वह अप्सरा-सी मालूम होती थी । सुन्दरता को कितनी ही तस्वीरें उसने देखी थीं, पर उसे इस समय शीशे की तस्वीर सबसे ज्यादा खूबसूरत मालूम होती थी ।

सुन्दरता और आत्मरुचि का साथ है। हल्दी बिना रंग के नहीं रह सकती । थोड़ी देर के लिए कुलीना सुन्दरता के मद से फूल उठी । वह तनकर खड़ी हो गयी । लोग कहते हैं कि सुन्दरता में जादू है, और वह जादू, जिसका कोई उतार नहीं । धर्म और कर्म, तन और मन सब सुन्दरता पर न्यौछावर हैं। मैं सुन्दर न सही, ऐसी कुरूपा भी नहीं हूँ। क्या मेरी सन्दरता में इतनी भी शक्ति नहीं है कि महाराज से मेरा अपराध क्षमा करा सके? ये बाहु-लतायें जिस समय उनके गले का हार होंगी, ये आँखें जिस समय प्रेम के मद से लात होकर देखेंगी, तब क्या मेरे सौन्दर्य की शीतलता उनकी क्रोधाग्नि को ठण्डा न कर देगी ? पर थोड़ी देर में रानी को ज्ञान हुआ। आह ! यह मैं क्या स्वप्न देख रही हूँ। मेरे मन में ऐसी बातें क्यों आती हैं? मैं अच्छी हूँ या बुरी हूँ, उनकी चेरी हूँ। मुझसे अपराध हुआ है, मुझे उनसे क्षमा माँगनी चाहिए । यह श्रृंगार और बनाव इस समय उपयुक्त नहीं है । यह सोचकर रानी ने सब गहने उतार दिये। इतर में बसी हुई हरे रेशम की साड़ी अलग कर दी। मोतियों से भरी

माँग खोल दी और वह खूब फूट-फूटकर रोयीं। हाय, यह मिलाप की रात वियोग की रात से भी विशेष दु:खदायिनी है ! भिखारिनी का भेष बना रानी शीशमहल की ओर चलीं। पैर आगे बढ़ते थे, पर मन पीछे हट जाता था । दरवाजे तक आयीं, पर भीतर पैर न रख सकीं। दिल धड़कने लगा। ऐसा जान पड़ा, मानो उसके पैर थर्रा रहे हैं। राजा जुझार सिंह बोले–"कौन है? कुलीना! भीतर क्यों नहीं आ जाती ?"

कुलीना ने जी कड़ा करके कहा–"महाराज! कैसे आऊँ? मैं अपनी जगह क्रोध को बैठा पाती हूँ।""

राजा–"यह क्यों नहीं कहतीं कि मन दोषी है, इसलिए आँखें नहीं मिलाने देता।"

कुलीना–"निस्सन्देह मुझसे अपराध हुआ है, पर एक अबला आपसे क्षमा का दान माँगती है।"

राजा–"इसका प्रायश्चित करना होगा।""

कुलीना–"क्योंकर ?"

राजा–"हरदौल के खून से ।"

कुलीना सिर से पैर तक काँप गयी । बोली–"क्या इसलिए कि आज मेरी भूल से ज्योनार के थालों में उलट- फेर हो गया?"

राजा–"नहीं, इसलिए कि तुम्हारे प्रेम में हरदौल ने उलट-फेर कर दिया ।"

जैसे आग की आँच से लोहा लाल हो जाता है, वैसे ही रानी का मुँह लाल हो गया । क्रोध की अग्नि सद्भावों को भस्म कर देती है, प्रेम और प्रतिष्ठा, दया और न्याय, सब जलकर राख हो जाते हैं। एक मिनट तक रानी को ऐसा मालूम हुआ, मानो दिल और दिमाग दोनों खौल रहे हैं। । पर उसने आत्म-दमन की अन्तिम चेष्टा से अपने को संभाला, केवल इतना बोली–"हरदौल को मैं अपना लड़का और भाई समझती हूँ।"

राजा उठ बैठे और कुछ नरम स्वर से बोले-"नहीं , हरदौल लड़का नहीं है, लड़का मैं हूँ, जिसने तुम्हारे ऊपर विश्वास किया । कुलीना! मुझे तुमसे ऐसी आशा न थी। मुझे तुम्हारे ऊपर घमण्ड था । मैं समझता था कि चाँद-सूर्य टल सकते हैं, पर तुम्हारा दिल नहीं टल सकता । पर आज मुझे मालूम हुआ कि वह मेरा लड़कपन था । बड़ों ने सच कहा है कि स्त्री का प्रेम पानी की धार है, जिस ओर ढाल पाता है, उधर ही बह जाता है। सोना ज्यादा गरम होकर पिघल जाता है।"

कलीना रोने लगी । क्रोध की आग पानी बनकर आँखों से निकल पड़ी । जब आवाज़ बस में हुई, तो बोली– "मैं आपके इस सन्देह को कैसे दूर करूँ?"

राजा–"हरदौल के खून से ।"

रानी–"मेरे खून से दाग न मिटेगा ?"

राजा–"तुम्हारे खून से और पक्का हो जायेगा ।"

रानी–"और कोई उपाय नहीं है?"

राजा–"नहीं ।"

रानी–"यह आपका अन्तिम विचार है?"

राजा–"हाँ, यह मेरा अन्तिम विचार है। देखो, इस पानदान में पान का बीड़ा रखा है । तुम्हारे सतीत्व की परीक्षा यही है कि तुम हरदौल को इसे अपने हाथों खिला दो । मेरे मन

का भ्रम उसी समय निकलेगा, जब इस घर से हरदौल की लाश निकलेगी ।"

रानी ने घृणा की दृष्टि से पान के बीड़े को देखा और वह उलटे पैर लौट आयी ।

रानी सोचने लगी–क्या हरदौल के प्राण लूँ? निर्दोष सच्चरित्र वीर हरदौल की जान से अपने सतीत्व की परीक्षा दूँ? उस हरदौल के खून से अपना हाथ काला करूँ, जो मुझे बहिन समझता है । यह पाप किसके सिर पड़ेगा? क्या एक निर्दोष का खून रंग न लायेगा? आह ! अभागी कुलीना! तुझे अपने सतीत्व की परीक्षा देने की आवश्यकता पड़ी है और वह ऐसी कठिन? नहीं, यह पाप मुझसे न होगा । यदि राजा मुझे कुलटा समझते हैं, समझें । उन्हें मुझ पर सन्देह हो , तो हो । मुझसे यह पाप न होगा । राजा को ऐसा सन्देह क्यों हूआ ? क्या केवल थालों के बदल जाने से? नहीं, अवश्य कोई और बात है। आज हरदौल उन्हें जंगल में मिल गया था। राजा ने उसकी कमर में तलवार देखी होगी। क्या आश्चर्य है हरदौल से कोई अपमान भी हो गया हो। मेरा अपराध क्या है? मुझ पर इतना बड़ा दोष क्यों लगाया जाता है? केवल थालों के बदल जाने से? हे ईश्वर! मैं किससे अपना दु:ख कहूँ? तू ही मेरा साक्षी है। जो चाहे सो हो, पर मुझसे यह पाप न होगा।

रानी ने फिर सोचा-राजा! क्या तुम्हारा हृदय ऐसा ओछा और नीच है? तुम मुझसे हरदौल की जान लेने को कहते हो? यदि तुमसे अधिकार और मान नहीं देखा जाता, तो क्यों साफ-साफ ऐसा नहीं कहते ? क्यों मरदों की लड़ाई नहीं लड़ते? क्यों स्वयं अपने हाथ से उसका सिर नहीं काटने और मुझसे वह काम करने को कहते हो? तुम खूब जानते हो, मैं नहीं कर सकती। यदि मुझसे तुम्हारा जी उकता गया है, यदि मैं तुम्हारी जान की जंजाल हो गयी हूँ, तो मुझे काशी या मथुरा भेज दो । मैं बेखटके चली जाऊँगी । पर ईश्वर के लिए मेरे सिर इतना बड़ा कलंक न लगने दो । पर मैं जीवित ही क्यों रहूँ? मेरे लिए अब जीवन में कोई सुख नहीं है। अब मेरा मरना ही अच्छा है । मैं स्वयं प्राण दे दूँगी , पर यह महापाप मुझसे न होगा। विचारों ने फिर पलटा खाया। तुमको पाप करना ही होगा । इससे बड़ा पाप शायद आज तक संसार में न हुआ हो, पर यह पाप तुमको करना होगा । तुम्हारे पतिव्रत पर सन्देह किया जा रहा है और तुम्हें इस सन्देह को मिटाना होगा । यदि तुम्हारी जान जोखिम में होती, तो कुछ हर्ज़ न था। अपनी जान देकर हरदौल को बचा लेती । पर इस समय तुम्हारे पतिव्रत पर आँच आ रही है। इसलिए तुम्हें यह पाप करना ही होगा और पाप करने के बाद हँसना और प्रसन्न रहना होगा । यदि तुम्हारा चित्त तनिक भी विचलित हुआ, यदि तुम्हारा मुखड़ा जरा भी मद्धिम हुआ, तो इतना बड़ा पाप करने पर भी तुम सन्देह मिटाने में सफल न होगी । तुम्हारे जी पर चाहे जो बीते, पर तुम्हें यह पाप करना ही पड़ेगा। । परन्तु कैसे होगा? क्या मैं हरदौल का सिर उतारूँगी? यह सोचकर रानी के शरीर में कंपकंपी आ गयी । नहीं, मेरा हाथ उस पर नहीं उठ सकता ।

प्यारे हरदौल! मैं तुम्हें विष नहीं खिला सकती । मैं मानती हूँ कि तुम मेरे आनन्द से विष का बीड़ा खा लोगे । हाँ, मैं जानती हूँ, तुम 'नहीं' न करोगे । पर मुझसे यह महापाप नहीं हो सकता, एक बार नहीं, हज़ार बार नहीं हो सकता ।

4

हरदौल को इन बातों की कुछ भी खबर न थी। आधी रात को एक दासी रोती हुई

उसके पास गयी और उसने उससे सब समाचार अक्षर-अक्षर कह सुनाया । वह दासी पानदान लेकर रानी के पीछे-पीछे राजमहल से दरवाजे तक गयी और सब बातें सुनकर आयी थी । हरदौल राजा का ढँग देखकर पहले ही ताड़ गया था कि राजा के मन में कोई-न-कोई काँटा अवश्य खटक रहा है । दासी की बातों ने उनके सन्देह को और भी पक्का कर दिया । उसने दासी से कड़ी मनाही कर दी कि सावधान, किसी दूसरे के कानों में डन बातों की भनक न पडे और वह स्वयं मरने को तैयार हो गया ।

हरदौल बुन्देलों की वीरता का सूरज था । उसकी भौंहों के तनिक इशारे से तीन लाख बुन्देले मरने के लिए इकट्ठे हो सकते थे । ओरछा उस पर न्यौछावर था । यदि जुझार सिंह खुले मैदान में उसका सामना करते, तो अवश्य मुँह की खाते । क्योंकि हरदौल भी बुन्देला था और बुन्देले अपने शत्रु के साथ किसी प्रकार की मुँहदेखी नहीं करते, मरना- मारना उनके जीवन का एक अच्छा दिल बहलाव है। उन्हें सदा इसकी लालसा रहती है कि कोई हमें चुनौती दे, कोई हमें छेड़े । उन्हें सदा खून की प्यास रहती है और वह प्यास कभी नहीं बुझती। परन्तु उस समय एक स्त्री को उसके खून की ज़रूरत थी और उसका साहस उसके कानों में कहता था कि एक निर्दोष और सती अबला के लिए अपने शरीर का खून देने में मुँह न मोड़ो। यदि भैया को यह सन्देह होता कि मैं उनके खून का प्यासा हूँ और उन्हें मारकर राज पर अधिकार करना चाहता हूँ, तो कुछ हर्ज़ न था। राज्य के लिए कत्ल और खून, दगा और फरेब सब उचित समझा गया है। परन्तु उनके इस सन्देह का निपटारा मेरे मरने के सिवा और किसी तरह नहीं हो सकता । इस समय मेरा धर्म है कि अपने प्राण देकर उनके इस सन्देह को दूर कर दूँ। उनके मन में यह दुखाने वाला सन्देह उत्पन्न करके भी यदि मैं जीता ही रहूँ और अपने मन की पवित्रता जताऊँ, तो मेरी ढिठाई है। नहीं, इस भले काम में अधिक आगा-पीछा करना अच्छा नहीं। मैं खुशी से विष का बीड़ा खाऊँगा। इससे बढ़कर शूरवीर की मृत्यु और क्या हो सकती है ।

क्रोध में आकर मारू के भय बढ़ाने वाले शब्द सुनकर रणक्षेत्र में अपनी जान को तुच्छ समझना इतना कठिन नहीं है। आज सच्चा वीर हरदौल अपने हृदय के बड़प्पन पर अपनी सारी वीरता और साहस न्यौछावर करने को उद्यत है ।

दूसरे दिन हरदौल ने खूब तड़के स्नान किया। बदन पर अस्त्र-शस्त्र सजा मुसकराता हुआ राजा के पास गया । राजा भी सोकर तुरन्त ही उठे थे, उनकी अलसायी हुई आँखें हरदौल की मूर्ति की ओर लगी हुई थीं । सामने संगमरमर की चौकी पर विष मिला पान सोने की तश्तरी में रखा हुआ था । राजा कभी पान की ओर ताकते और कभी मूर्ति की ओर । शायद उनके विचार ने इस विष की गाँठ और उस मूर्ति में एक सम्बन्ध पैदा कर दिया । उस समय जो हरदौल एकाएक घर में पहुँचे, तो राजा चौंक पड़े। उन्होंने संभलकर पूछा-"इस समय कहाँ चले?"

हरदौल का मुखड़ा प्रफुल्लित था । वह हँसकर बोला- "कल आप यहाँ पधारे हैं, इसी खुशी में मैं आज शिकार खेलने जाता हूँ। आपको ईश्वर ने अजित बनाया है, मुझे अपने हाथ से बीड़ा दीजिये ।"

यह कहकर हरदौल ने चौकी पर से पानदान उठा लिया और उसे राजा के सामने रखकर बीड़ा लेने के लिए हाथ बढ़ाया । हरदौल का खिला हुआ मुखड़ा देखकर राजा की

ईर्ष्या की आग और भी भड़क उठी-दुष्ट, मेरे घाव पर नमक छिड़कने आया है। मेरे मान और विश्वास को मिट्टी में मिलाने पर भी तेरा जी नहीं भरा। मुझसे विजय का बीड़ा माँगता है। हाँ, यह विजय का बीड़ा है, पर तेरी विजय का नहीं, मेरी विजय का।

इतना मन में कहकर जुझार सिंह ने बीड़े को हाथ में उठाया। वे एक क्षण-भर तक कुछ सोचते रहे, फिर मुसकराकर हरदौल को बीड़ा दे दिया। हरदौल ने सिर झुकाकर बीड़ा लिया, उसे माथे पर चढ़ाया, एक बार बड़ी ही करुणा के साथ चारों ओर देखा और मुँह में रख लिया। एक सच्चे राजपूत ने अपना पुरुषत्व दिखा दिया। विष हलाहल था, कण्ठ के नीचे उतरते ही हरदौल के मुखड़े पर मुर्दनी छा गयी और आँखें बुझ गयीं। उसने एक ठण्डी साँस ली दोनों हाथ जोड़कर जुझार सिंह को प्रणाम किया और जमीन पर बैठ गया। उसके ललाट पर पसीने की ठण्डी-ठण्डी बूँदें दिखाई दे रही थीं और साँस तेज़ी से चलने लगी थी, पर चेहरे पर प्रसन्नता और सन्तोष की झलक दिखाई देती थी।

जुझार सिंह अपनी जगह से जरा भी न हिले। उनके चेहरे पर ईर्ष्या से भरी हुई मुसकराहट छायी हुई थी, पर आँखों में आँसू भर आये थे। उजेले और अंधेरे का मिलाप हो गया था।

❑❑